नगर निगम का गोरख धंधा, निर्माणों को तोड़ना और बनवाना

फ़रीदाबाद (म.मो.) यूं तो नगर-निगम का हर काम इसके अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए लूट का कारोबार है, परन्तु भवन निर्माण, वैध /अवैध इनके लिये बहुत मोटी लूट का जरिया है। अब तो जनता के 'चुने' हुए नुमाइंदे भी इस धंधे में पूरी तरह से शामिल हो चुके हैं। इस धंधे में जरूरी है कि किसी को भी वैध निर्माण की अनुमति न देकर उसे अवैध निर्माण के लिये प्रेरित एवं मजबूर किया जाए। लिहाजा जब भी कोई नगर-निगम में नक्शा पास करवाने अथवा सी.एल.यू कराने आता है तो उसे परेशान करके अवैध निर्माण करने का 'सरल' तरीका बताया जाता है।

10 महीने पहले एन.एच 5 की मेन मार्किट में प्लॉट नम्बर 5 सी/44 पर चांद नामक बिल्डर ने 233 वर्ग गज में 36 दुकानों का छोटा सा शॉपिंग काम्पलैक्स बनाने के लिए मकान मालिक से सौदा तय किया था। ज्यों ही बिल्डर चांद ने मकान मालिक से सौदा तय किया त्यों ही तथाकथित समाजसेवियों, जनप्रतिनिधयों व उनके दलालों के कान खड़े हो गए। पांच नम्बर से निकलने वाले एक अखबार 'रैपको न्यूज' के पत्रकार ने चांद से संपर्क साध कर कहा कि निर्माण तो केवल तभी हो पाएगा जब वह कुछ सेवा पानी करेगा। भ्रष्टसमाज के रीति-रिवाजों से भली-भांति परिचित बिल्डर तुरंत राज़ी हो गया शगुन के तौर पर पत्रकार महोदय ने एक लाख खुद लेकर, एक लाख निगम के तत्कालीन बिल्डिंग इंस्पेक्टर रणबीर सिंह तथा डेढ लाख स्थानीय पार्षदपति नरेश गौसांई को दिला दिए। काम शुरू हो गया और जोरों से चला भी तब पार्षदपति ने उसी दलाल के माध्यम से खबर भेजी कि बिल्डर उसे 10 लाख रुपये दे। बिल्डर को यह रकम रीति-रिवाज से कुछ ज़्यादा लगी तो बिल्डर ने सौदेबाज़ी करके 7 लाख रुपये में सौदा पटा लिया। डेढ लाख एडवांस भी दे दिया गया। इशारे के तौर पर पार्षदपति व उसके आका पूर्व मंत्री ए.सी.चौधरी के चित्रों वाला एक बड़ा होर्डिंग भी लगा दिया गया। यह इशारा नगर निगम वालों को बताने के लिए होता है कि सौदा फिट हो गया है। बिल्डिंग को बनाने दिया जाए।

कुछ दिनों बाद जब काम कुछ और आगे बढा और पार्षदपति ने 'शेष' रकम पाने के लिए दबाव बनाना शुरू किया तो बिल्डर चांद ने साफ-साफ कह दिया कि शेष रकम तो रीति-रिवाज के अनुसार ही मिलेगी। यानी की जितना-जितना काम पूरा होता जाएगा उतनी-उतनी रकम भी मिलती जाएगी। पार्षद पति को यह मंजूर नही था, वह कुछ ज़्यादा ही जल्दी में था। उसने समझौता तोड़कर नगर-निगम के दस्ते को बुलवा लिया। तोड़-फ़ोड़ दस्ता पूरे लाव-लश्कर के साथ 5 सी/ 44 के शॉपिंग काम्पलैक्स में पहुंचा और अपनी कार्रवाई कर डाली कुछ हिस्सा तोड़कर बाकी बिल्डिंग को सील कर दिया गया।

लगभग 10 महीने का समय बीत जाने के बाद बिल्डर चांद शॉपिंग काम्पलैक्स की सील खुलवाने में पूरी तरह से थक हार गया। तो उसने अपने पार्टनर नरेश आहूजा से अपने हिस्से के रुपये की मांग की साथ ही अपने को शॉपिंग काम्पलैक्स से फ़ारिग करने को कहा इस पर नरेश आहूजा ने 'रैपको न्यूज' के पत्रकार से दोबारा संपर्क साधकर पार्षद पति नरेश गौसांई के साथ 5 सी/44 शॉपिंग काम्पलैक्स की बातचीत को लेकर एक मीटिंग रखी जिसमें सूत्रों के मुताबिक पार्षदपति ने बड़ी बेशर्मी से बिल्डर नरेश आहूजा से नगर-निगम के अधिकारियों के लिए 10 लाख रुपये तथा शॉपिंग काम्पलैक्स में अपनी आधी हिस्सेदारी की शर्त रखी। बिल्डर नरेश आहूजा ने देर न करते हुए पार्षदपति को 10 लाख नकद दिए और अपना पार्टनर भी बना लिया। जिसके तुरंत बाद से 5 सी/ 44 शॉपिंग काम्पलैक्स में निर्माण का काम भी पूरे जोरों पर है।

अब सवाल ये है कि अगर 5सी/44 वैध तरीके से बन रहा था, तो उसे तोड़ने के साथ सील क्यों किया गया? और अवैध था तो अब निर्माण कार्य कैसे चल रहा है? ठीक ऐसा ही मामला एन.एच.5 नम्बर में शिव मंदिर रोड का है, जहां एक शॉपिंग काम्पलैक्स बन रहा है। जिसमें 'रैपको न्यूज' के पत्रकार ने कई बार नगर निगम के दस्ते से तोड़-फ़ोड़ करवा कर पार्षदपति नरेश गौसांई की हिस्सेदारी करवा दी। एन.एच. 5 नम्बर में पार्षदपति एक दो नही, दर्जनों अवैध निर्माणों में हिस्सेदारी करे बैठा है। ये काम कोई चोरी-छिपे नहीं बल्कि खुलेआम हो रहा है। वहीं दूसरी तरफ नगर निगम की ज्वाइंट कमिश्नर ने दिनांक 4 मई को 5 ई/ 14 बी. पी में खुद खड़े होकर तोड़-फ़ोड़ कराई। यहां प्रश्न यह उठता है कि क्या किसी स्तर पर सौदेबाज़ी के माध्यम से इस निर्णय कार्य को भी सम्पन्न करा दिया जायेगा? अभी तक का अनुभव तो यही बताता है कि नगर निगम का एक अधिकारी किसी भी निर्माण को अवैध बता कर तोड़ देता है तो दूसरा अधिकारी उसे वैध बताकर अथवा कम्पाऊंड करके बनाने की इजाजत दे देता है। बस यही खेल नगर निगम वालों की लूट कमाई का मोटा जरिया बना हुआ है।

स्कूल अध्यापकों की परीक्षा : सुधार या सज़ा

हरियाणा सरकार के एक निर्णय के अनुसार स्कूल के सभी अध्यापकों की योग्यता की जांच के लिये उनकी परीक्षा ली जायेगी। गौरतलब है कि कुछ साल पहले लिये गये निर्णय के अनुसार आठवीं तक के स्कूली बच्चों की कोई परीक्षा नहीं ली जाती है। अब किसी न किसी की तो परीक्षा लेनी है सो बच्चों की नहीं तो मास्टरों की सही। अंधेर नगरी में किसी न किसी को तो फ़ांसी चढ़ना ही होता है क्योंकि राजा का हुक्म है।

हम इस बात से पूरी तरह सहमत है कि पिछले कुछ सालों में हरियाणा में शिक्षा का स्तर ही नहीं गिरा है। बल्कि स्कूली शिक्षा पूरी तरह बर्बाद कर दी गई है। वैसे तो पूरे देश के स्तर पर हालात कमोबेश यही हैं लेकिन फ़िलहाल हम हरियाणा की स्थिति की समीक्षा तक ही सीमित रहेंगे। शिक्षा में गिरावट का स्तर यह आ गया है कि अध्यापकों के इंटरव्यू लेने के लिये योग्य अध्यापक (सब्जेक्ट एक्स्पर्ट के रूप में) ढूंढे नहीं मिलते और दूसरी तरफ़ बोर्ड के पेपरों में नकल की सहूलियत होने पर भी मुश्किल हो जाती है क्योंकि कोई योग्य नकल करवाने वाला नहीं होता।

सबसे पहले तो यह जानना जरूरी है कि मास्टरों की परीक्षा लेने का यह निर्णय किसने लिया। क्या इसमें मास्टरों अभिभावकों, शिक्षाविदों आदि से सलाह मशविरा किया गया। क्या इसका कोई पाठ्यक्रम तय किया गया, कोई नियम कानून तय किये गये। क्या इसके लिये कोई दृष्टिकोण पत्र तैयार करके बहस के लिये जारी किया गया? या फ़िर किसी मोहम्मद तुगलक आई.ए.एस. ने अपनी सनक पूरी करने के लिये किसी राजनेता से मिलकर चुपचाप आदेश जारी कर दियें। हरियाणा में अफ़सरशाही इस कदर हावी है कि वह इस तरह की किसी जनतान्त्रिक प्रक्रिया से कोई निर्णय लेने को अपना अपमान समझती है। इसलिये जाहिर है कि टैस्ट लेने का निर्णय भी बिना किसी विचार विमर्श के उपरी स्तर पर ले लिया गया और लागू कर दिया गया।

परीक्षायें शुरू होते ही दोनों तरफ़ से जंग शुरू हो गई है। अध्यापक संघ का कहना है कि इस तरह का कोई प्रावधान उनकी सेवा शर्तों में नहीं है, और किसी भी विभाग में इस तरह की योग्यता परीक्षा नहीं होती फ़िर केवल उनके लिये ही क्यों? मुख्य रूप से अध्यापकों को ये डर सता रहा है कि बाद में इस परीक्षा को उनकी अगली प्रमोशन या अगले पे-स्केल की पूर्व शर्ट के रूप में रखा जा सकता है। इसलिये वो इसका बहिष्कार कर रहे हैं। दूसरी तरफ़ प्रशासन का कहना है कि शिक्षा का स्तर सुधारने के लिये यह योग्यता जांच जरूरी है क्योंकि ऐसे-ऐसे अध्यापक भरे पड़े हैं। जिन्हें छुट्टी के लिये पत्र लिखना तक नहीं आता।

वास्तविकता यह है कि सरकारी सकूलों में शिक्षा का स्तर रसातल में चला गया गया है। बहुत सारे अध्यापक पढाते नहीं हैं और बहुत सारों को पढाना आता नहीं है। लेकिन उसके लिये दोषी कौन है? क्या इन्हीं अफ़सरों ने इन अध्यापकों को राजनेताओं के इशारे पर भर्ती नहीं किया? क्या दोनों चौटाले इसी कारण जेल में बन्द नहीं हैं? और क्या आनेवाले समय में हुड्डा भी इसी बाबत जेल में नहीं होंगे? एच. सी. एस. अफ़सरों की कौन सी ऐसी भर्ती है जिसमें भ्रष्टाचार के आरोप ना लगे हों और मामला कोर्ट कचहरी में ना गया हो, चाहे सरकार किसी की रही हो। और प्रोमोशन से एच. सी. एस. में आये कर्मचारियों को जो परीक्षा पास करनी होती है जिसके पास ना करने पर कितने एच.सी.एस अफ़सरों को आज तक हटाया गया? एक भी नहीं, जबकि उनके सेवा नियमों में इसका प्रावधान है। आई.ए.एस. अफ़सरों को कितने 'एग्जाम' देने होते हैं। उनके लिये परीक्षा का प्रावधान क्यों नहीं? भ्रष्ट अफ़सरों और नेताओं द्वारा भर्ती किये गये नालायक मास्टर शिक्षा के गिरते स्तर का एक कारण है। दूसरा कारण है मास्टरों को शिक्षा के अलावा दुनिया भर के दूसरे कामों में जोते रखना-कहीं एन.एस.एस. हैं, इलैक्शन हैं, जनगणना है, टीकाकरण है, जागरूकता रैली है, अब तो रैड क्रांस की गाय भी स्कूलों में चरने आने लगी हैं। मिड डे मील है, स्कालरशिप बांटनी, बच्चों के बैंक खाते खुलवाने; अरे अध्यापक पढाये तो पढाये कब? ऊपर से स्कूल भवन टूटे पड़े, पानी और शौचालयों का प्रबंध नहीं। और डांट मारने को ऊपर से अफ़सर।

इन सव परिस्थितियों को देखते हुये अध्यापक संघों का डर उचित लगता है कि ये परीक्षाएं सुधार के लिए नहीं बल्कि अध्यापकों को सजा देने में प्रयुक्त होंगी। इन टेस्टों में पूछे गये उटपटांग सवाल-कमरे का साइज, डी.डी. पावर आदि भी इस डर की पुष्टि कराते हैं कि इनमें फेल करके उन्हें अयोग्य करार दे के उन्हें ब्लैकमेल किया जायेगा। यदि सरकार वास्तव में शिक्षा का स्तर सुधारना चाहती है तो उसे सबसे पहले भर्ती व्यवस्था पारदर्शी बनानी होगी, भवनों को बनाना होगा, फालतू के कामों से बच्चों और शिक्षकों को मुक्त करना होगा और एक अच्छा पढाई का वातावरण बनाने के बाद नालायकों की छंटनी के तरफ़ कदम बढाना होगा लेकिन सिर्फ मास्टरों में नहीं-हर विभाग में।

अजातशत्रु

भाषाओं की कब्रगाह बन गया भारत

-गणेश डेवी

पिछले 50 साल में भारत की करीब 20 फीसदी भाषाएं विलुप्त हो गयी हैं। 50 साल पहले 1961 की जनगणना के बाद 1652 मातृभाषाओं का पता चला था। उसके बाद ऐसी कोई लिस्ट नहीं बनी।

उस वक्त माना गया था कि 1652 नामों में से करीब 1100 मातृभाषाऐं थीं, क्योंकि कई बार लोग़ गलत सूचनाएं दे देते थे।

वडोदरा के भाषा शोध और प्रकाशन केन्द्र के सर्वेक्षण के मुतार के मुताबिक यह बात सामने आयी है।

1971 में केवल 108 भाषाओं की सूची ही सामने आयी थी क्योंकि सरकारी नीतियों के हिसाब से किसी भाषा को सूची में शामिल करने के लिये उसे बोलने वालों की तादाद कम से कम 10 हज़ार होनी चाहिए। यह भारत सरकार ने कटऑप प्वाइंट स्वीकारा था।

इसलिए इस बार भाषाओं के बारे में निष्कर्ष निकालने के लिए हमने 1961 की सूची को आधार बनाया।

जब हमने 'पीपुल लिंगुइस्टिक सर्वे' किया तब हमें 1100 में सिर्फ 780 भाषाऐं ही देखने को मिलीं। शायद हमसे 50-60-100 भाषाएं रह गईं हों क्योंकि भारत एक बड़ा देश है और यहां 28 राज्य हैं। हमारे पास इतनी ताकत नहीं थी कि हम पूरे देश को कवर कर सकें। हमारे पास सिर्फ तीन हजार लोग ही थे और हमने चार साल तक काम किया। इस काम के लिए बहुत से लोग चाहिए थे।

हम यह मान भी लें कि हमें 850 भाषाएं मिल गईं हैं तब भी 1100 में से 250 भाषाओं के विलुप्त होने का अनुमान है।

''दो तरह की भाषाएं हुई लुप्त''

इसकी दो वजहें हैं और भारत में दो प्रकार की भाषाऐं लुप्त हुईं हैं।

एक तो तटीय इलाकों के लोग 'सी फार्मिंग' की तकनीक में बदलाव होने से शहरों की तरफ़ चले गए। उनकी भाषाऐं ज़्यादा विलुप्त हुईं। दूसरे जो अवगीकृत श्रेणी है, बंजारा समुदाय के लोग, जिन्हें एक समय अपराधी माना जाता था। वे अब शहरों में जाकर अपनी पहचान छिपाने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसे 190 समुदाय हैं, जिनकी भाषाएं बड़े पैमाने पर लुप्त हो गईं हैं। हर भाषा में पर्यावरण से जुड़ा एक ज्ञान जुड़ा होता है। जब एक भाषा चली जाती है तो उसे बोलने वाले पूरे समूह का ज्ञान लुप्त हो जाता है। जो एक बहुत बड़ा नुकसान है क्योंकि भाषा ही एक माध्यम है जिसमें लोग अपनी सामूहिक समृति और ज्ञान को जीवित रखते हैं।

''भाषा आर्थिक पूंजी भी है''

'सी फार्मिंग' की तकनीक में बदलाव आया और तटीय इलाकों के लोग शहरों में चले गये। इसी के साथ उनकी भाषाओं का पतन हो गया।

भाषाओं का इतिहास तो 70 हज़ार पुराना है जबकि भाषाएं लिखने का इतिहास सिर्फ चार हजार साल पुराना ही है। इसलिए ऐसी भाषाओं के लिए यह संस्कृति का ह्रास है।

खासकर जो भाषाएं लिखी ही नहीं गयीं और जब वे नष्ट होती हैं, तो यह बहुत बड़ा नुकसान होता है। यह सांस्कृति नुकसान तो है ही, साथ ही आर्थिक नुकसान भी है। भाषा आर्थिक पूंजी होती है क्योंकि आज की सभी तकनीकें भाषा पर आधारित तकनीकें हैं।

चाहे पहले की रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान या इंजीनियरिंग से जुड़ी तकनीक हो या आज के दौर का यूनिवर्सल अनुवाद, मोबाइल तकनीक सभी भाषा से जुड़ी हैं। ऐसे में भाषाओं का लुप्त होना एक आर्थिक नुकसान है।

'शहर में हो भाषाओं के लिए जगह'

भाषा बचाने का मतलब है कि भाषा बोलने वाले समुदाय को बचाना। ऐसे समदायों के लिए जो नये विकास के विचार से पीड़ित हैं, उनके लिए एक माइक्रोप्लानिंग की जरूरत है। हर समुदाय चाहे वह सागर तटीय हो, घुमंतू समुदाय हो, पहाड़ी इलाकों, मैदानी और शहरी सभी समुदायों के लोग़ों के लिए अलग योजना की जरूरत है।

बहुत से लोग शहरी करण को भाषाओं के लुप्त होने का कारण मानते हैं, लेकिन मेरे हिसाब से शहरीकरण भाषाओं के लिए खराब नहीं है। शहरों में इन भाषाओं की अपनी एक जगह होनी चाहिए। बड़े शहरों का भी बहुभाषी होकर उभरना जरूरी है।

'सभी भाषाओं को मिले सुरक्षा'

''हिंदी को डरने की जरूरत नहीं क्योंकि हिंदी दुनिया की भाषाओं के मामले में चीनी और अंग्रेजी के बाद सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषा है। वह स्पेनिश से आगे निकल गयी है। मगर छोटी भाषाओं को बहुत खतरा है।' जिसकी लिपी नहीं हैं उसे बोली कहने का रिवाज है। ऐसे में अगर देखें तो अंग्रेजी की भी लिपी नहीं है वह रोमन इस्तेमाल करती है। किसी भी लिपी का इस्तेमाल दुनिया की किसी भी भाषा के लिए हो सकता है। जो भाषा प्रिंटिंग टेक्नोलॉजी में नहीं आयी, वह तो तकनीकी इतिहास का हिस्सा है न कि भाषा का अंगभूत अंग। इसलिए मैं इन्हें भाषा ही कहूंगा।

सरकारें न तो भाषा को जन्म दे सकती हैं और न ही भाषा का पालन करा सकती हैं। मगर सरकार की नीतियों से कभी-कभी भाषाऐं समय से पहले ही मर सकती हैं। इसलिए सरकार के लिए जरूरी है कि वह भाषा को ध्यान में रखकर विकास की माइक्रो प्लानिंग करे।

हमारे देश में राष्ट्रीय स्तर की योजनाएं बनती हैं और राज्यों में इसकी ही छवि देखी जाती है। इसी तरह पूरे देश में भाषा के लिए योजना बनाना जरूरी है। मैं यह इसलिए कह रहा हूं क्योंकि 1952 के बाद देश में भाषावार प्रांत बने। इसलिए हम मानते हैं कि हर राज्य उस भाषा का राज्य है, चाहे वह तमिलनाडु हो, कर्नाटक हो या कोई और। हमने अनुसूची में केवल 22 भाषाएं रखी हैं। केवल उन्हें ही सुरक्षा देने के बजाय सभी भाषाओं को बगैर भेदभाव के सुरक्षा देना जरूरी है। अगर सरकार ऐसा नहीं करेगी तो बाकी सभी भाषाऐं मृत्यु के रास्ते पर चली जाएंगी।

'हिंदी को डरने की जरूरत नहीं'

बंजारे समुदाय ने अपने छवि के चलते बड़े शहरों में पलायन किया और पहचान छिपा कर रखी। इस वजह से कई भाषाएं विलुप्त हो गईं।

दस हजार साल पहले लोग़ खेती की तरफ मुड़े उस वक्त बहुत सी भाषाएं विलुप्त हो गईं। हमारे समय में भी बहुत बड़ा आर्थिक बदलाव देखने में आ रहा है। ऐसे में भाषाओं की दुर्दशा होना स्वाभाविक है। मगर अंग्रेजी से हिंदी को डर या हिंदी से अन्य भाषाओं को डर ठीक नहीं है।

पिछले 50 साल में हिंदीभाषी 26 करोड़ से बढकर 42 करोड़ हो गये जबकि अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या 33 करोड़ से बढकर 49 करोड़ हो गयी। इस तरह हिंदी की वृद्धि दर अंग्रेजी से ज़्यादा है।

मेरे हिसाब से हिंदी को डरने की जरूरत नहीं क्योंकि हिंदी दुनिया की भाषाओं के मामले में चीनी और अंग्रेजी के बाद सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषा है। वह स्पेनिश से आगे निकल गयी है। मगर छोटी भाषाओं को बहुत खतरा है

भाषा की लहरें

-त्रिलोचन

भाषाओं के अगम समुद्रों का अवगाहन
मैंने किया। मुझे मानव-जीवन की माया
सदा मुग्ध करती है, अहोरात्र आवाहन
सुन सुनकर धाया-धूपा, मन में भर लाया
ध्यान एक से एक अनोखे। सबकुछ पाया
शब्दों में, देखा सबकुछ ध्वनि-रूप हो गया।
मेघों ने आकाश घेरकर जी भर गाया।
मुद्रा, चेष्टा, भाव, वेग, तत्काल खो गया,
जीवन की शैय्या पर आकर मरण सो गया।
सबकुछ, सबकुछ, सबकुछ,सबकुछ, सबकुछ भाषा।
भाषा की अंजुली से मानव ह्रदय टो गया
कवि मानव का, जगा नया नूतन अभिलाषा।
भाषा की लहरों में जीवन की हलचल है,
ध्वनि में क्रिया भरी है और क्रिया में बल है। (पीपुल लिंगुइस्टिक सर्वे के मुख्य संयोजक गणेश डेवी से अमरेश द्विवेदी की बातचीत पर आधारित, बीबीसी हिन्दी से साभार)